RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-01
January-2018
ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

हिंदी कविता और आत्मकथा में दलित का चित्रण

प्रा. डॉ. हणमंत महादेव सोहनी

हिंदी विभाग, सदाशिवराव मंडलिक महाविद्यालय, मुरगूड, तह. कागल, कोल्हापूर

प्रस्तावना:-

आधुनिक काल में स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में 'दलित' शब्द का विशेष अर्थ प्राप्त हो रहा है। 'दलित' शब्द को लेकर साहित्य में विद्वानों में मतभेद हैं।

'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'दल' धातु से हुई है, जिसका अर्थ दबा, कुचला है। हरदेव बाहरी के 'हिंदी शब्दकोश' के अनुसार "दलित का अर्थ कुचला हुआ, दबाया हुआ है।"[1] 'मानक हिंदी कोश' में 'दलित' शब्द का अर्थ है- "मसला हुआ, मर्दित दबाया हुआ मान मर्दित है।"[2] अर्थात् कुचला हुआ, मसला हुआ, दबाया हुआ |

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के अनुसार "दलित जातियाँ' वे है जो अपवित्रकारी होती है। इनमें निम्नश्रेणी के कारीगर, धोबी, मोची, भंगी बसौर सेवक जातियाँ जैसे चमार, डंगारी, सऊरी आते हैं। कृषि- मजदूरी का कार्य करनेवाले तथा बँधुआ मजदूरी करनेवाले दलित कहलाते हैं।"[2] अर्थात् दलित जातियाँ अपनी जाति के अनुसार व्यवसाय करते हुए दिखाई देते हैं।

उद्भव और विकास:-

दलित साहित्य का उद्भव और विकास सबसे पहले सन 1960 के आसपास हुआ जिसकी जड़े आंबेडकर वादी विचारों में तलाशी जा सकती है। डॉ.आंबेडकर के प्रयत्नों के फल स्वरूप दलितों को शिक्षा के अवसर प्राप्त हुए। डॉ. आंबेडकर जानते थे कि दलितों को शिक्षित किए बिना उनका विकास संभव नहीं है।

मराठी के दलित साहित्यकार दया पवार को सन 1980 इ. उनकी चर्चीत आत्मकथा 'बलूत' के लिए साहित्य आकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'बलूत' का हिंदी अनुवाद 'अछूत' नामसे हुआ मराठी दलित साहित्य ने हिंदी लेखक को बहुत प्रभावीत किया। दलित साहित्य का विकास मराठी के साथ - साथ गुजराती, मल्यालम, तेलगू, तमील, पंजाबी आदि भाषाओं में भी हो रहा है।

'दलित' साहित्य में आक्रोश या विद्रोह की भावना प्रमुख है। 'दलित' साहित्य में सामाजिक दर्द, जातिवाद की पीडा, शोषण की कसक तथा शोषण के कारणों की तलाश देखी जा सकती है। 'दलित' साहित्य मे भाग्यवाद को अस्विकार करने की भावना है। 'दलित' साहित्य पद विधान भी तोड़ता है और जन भाषा का हिमायती भी है।

डॉ. धर्मवीर ने कबीर जी पर अपने विचोरों को व्यक्त करते हुए लिखा हें , "कबीर को इस बात की चिंता नहीं थी कि मुसलमान शासकों द्वारा काशी के ब्राह्मणों के जनेऊ तोड़े जा रहे थे, पर कबीर की असली चिंता यह थी कि उस हाल में भी ब्राह्मण कबीर को और कबीर की जुलाहा जाति को अच्छूत मान रहा था।"[3] स्पस्ट है कि जाति के दंश को कबीर ने कई बार झेला है |

प्रेमचंद, निराला, उग्र, आमृतलाल नागर, राहुल सांकृत्यायन, रामधारी सिंह दिनकर, रांगेय राघव में लेकर जगदिशचंद्र, मदन दीक्षीत, डॉ. धर्मवीर तक हिंदी में 'दलित' साहित्यकारों की समृध्द परंपरा रही है। इन दलित साहित्यकारों ने दलितों के शोषण के विरूध्द हार्दिक संवेदना और सहानुभूति के साथ लिखा है। गैर 'दलित' साहित्यकार भी अपनी हार्दिक संवेदना के आधार पर दलित आंदोलन में सहभागिता कर रहे हैं। यह सच है कि दलित और गैर-दलित लेखकों की अनुभव प्रकिया एक - सी नहीं हो सकती। दलित आंदोलन को व्यापक और प्रभावी करने हेतु राजेंद्र यादव, मुदाराक्षस और रमणिका गुप्ता आदि गैर दलित साहित्यकार महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

भेदभाव:-

भेद को लेकर विश्व में कई भेद दिखाई देते हैं। जैसे की गरीब - अमीर, मजदूर-मालिक और काले-गोरे आदि भेद है। भारत में भी उपर्युक्त तीनों भेदों का दर्शन तो होता ही है, लेकिन वर्ण व्यवस्था के कारण जन्मजात भेद, लिंग भेद और धर्म भेद भी दिखाई देता है। अमरिका जैसे प्रगत राष्ट्रों में भी गोरा और काला रंगभेद की नीति 'दलित' संदर्भ में देखी जा सकती है | अमेरिकन लोग भारतीयों को काले रंग के 'दलित' ही समझते हैं। अफ्रीका एवं एशियाई देशों में भी 'दलित' कई स्वरूपों में विद्यमान है | इस दृष्टिकोण में 'दलित' के अर्थ की व्यापकता विश्यात्मक है।

दलित साहित्य विश्व के उन करोडो लोगों का जीवन भाष्य है, जिनकी श्रमसाधना और सहायता से अनेक राष्ट्र आत्मनिर्भर और स्वाभिमान संपन्न हुए हैं। सदियों से दलितों के साथ निर्मम, निष्ठुर और अमानवीय व्यवहार हुआ है। उस के परिणाम स्वरूप कला, साहित्य, संस्कृति से 'दलित' का नाता लगभग टूट सा गया था। दलित वर्ग को एक लंबे समय तक सामाजिक भागिदारी के लिए तरसना और छटपटाना पड़ा। आज के संदर्भ में जिसे हम दलित साहित्य कहते हैं वह उसी छटपटाहट का प्रतिफलन है। अत: दलित साहित्य यथार्त का दर्शन है।

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

हिंदी साहित्य में दलित का चित्रण:-

दलित साहित्य की प्रत्येक विधा के केंद्र में व्यापक साहित्य लिखा जा रहा है। डॉ. नवल वियोगी, डॉ. धर्मवीर, डॉ. महिप सिंग, डॉ. विमल कीर्ति, मोहनदास, नैमिषराय, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, के. सी. मिश्राम, जय प्रकाश कर्दम, सौराजसिंह बेचैन आदि साहित्यकारों ने कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, शोध, आलोचना विधा में प्रचुर साहित्य का सृजन किया है।

कविता:-

भारत के मध्य काल के इतिहास में दलितो के निर्गुण संत कवि कबीर और रैदास ने दलित चिंतन को मजबूती दी। रैदास का अधिकांश साहित्य उपलब्ध नहीं है और कबीर का बीजक प्रक्षिप्तों में घीरा है।

हिंदी साहित्य में हिरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' पहली दलित काव्य रचना मानी जा सकती है। क्रांतिकारी कवि हिरा डोम ने अपने प्रश्नों के माध्यम से ब्राह्मणवादी क्रूर व्यवस्था पर तिखा आक्रोश व्यक्त किया है।

डॉ. शाम सिंह 'शशि' 'एकलव्य' कविता में अपनी व्यथा को कलात्मक अभिव्यक्ति देते हैं। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर कविता के माध्यम से दलित काव्य की टीस महसूस करवाते हैं।

दलित कविता के केंद्र में अतीत की अनुदारता, वर्तमान की निष्ठुरता और वैचारिक उथल-पुथल पायी जाती है। दलित कविता का रचनाकार अमेरीका के निग्रो और दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत रचनाकारों से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ हैं। दलित साहित्य के उत्थान के लिए संस्थागत प्रयास भी जारी है।

डॉ. नामवर सिंह ने 'दर्द के दस्तावेज' में यथार्थ और स्वाभिमान चेतना से युक्त दलित कवियों की कविताओं का संपादन किया है।

रमणिका गुप्ता दलित शोषण के विरूध्द गाँव में होनेवाले परिवर्तन के संदर्भ में लिखती है-

"गाँव का भूगोल बदल रहा है, हाशिये पर बसे लोगों को

गाँव के मध्य बसाने के लिए, गाँव का नक्शा बदलना जरूरी हैं ....।"[4]

अत: दलित वर्ग का जीवन बदलने के लिए रूढि-परंपराओं को बदलता महत्वपूर्ण है।

दलित साहित्यकारों की प्रमुख कृतियाँ:- सुखवीर सिंह (बयान बाहर), एम. आर. विद्रोही (दलित पचास), ओम प्रकाश वाल्मीकि (सदियों की सताप), सोहनपाल समुनाक्षर (अंधा समाज और बहरे लोग), एन. सिंह (सतह से उठते हुए), सूरजपाल चौहान (प्रयास), कुसुम वियोगी (टुकडे टुकडे दंश), श्यौराज सिंह बेचैन (क्रौंच हूँ मैं), माताप्रसाद (दिग्विजयी रावण), मोहनदास नैमिषराय (आग और आंदोलन), आदि प्रमुख प्रकाशित काव्य रचनाएँ हैं।

दलित महिला कवयित्रियों में सुशिला टाकभौर की (तुमने उसे कब पहचाना), रजनी तिलक की (पदचाप), आदि उल्लेखनीय है।

डॉ. सुशीला टाकभौरे दलित चेतना की परंपराओं के संदर्भ में साहस में लिखती है- "चेतना है हमारे बीच सदियों से, पर साहस का अभाव है।"[5] अतः स्पष्ट है कि कवयित्री ने दलित वर्ग को साहस के साथ खडे रहने का संदेश दिया है।

आत्मकथा:-

आत्मकथा दलित साहित्य में महत्वपूर्ण विधा मानी जाती है। मराठी दलित साहित्य में आत्मकथा लेखन की एक लंबी परंपरा रही है। दया पवार की (बलूत), शरण कुमार लिंबाले की (अक्करमासी), लक्ष्मण माने की (पराया), लक्ष्मण गायकवाड की (उठाईगीर), प्र. ई. सोनकांबले (यादों के पंछी) वेबी कांबले की (जीवन हमारा) हिंदी में अनुदित हो चुकी है। इन आत्मकथाओं के माध्यम से मराठी के दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन संघर्ष और यातनाओं का चित्रण किया है। उनका भोगा हुआ यथार्थ इन आत्मकथाओं में उजागर हुआ है।

आत्मकथा 'तिरस्कृत' एक हिंदी की महत्वपूर्ण दलित आत्मकथा है। प्रस्तुत आत्मकथा सूरजपाल चौहान की है सूरजपाल चौहान ने अपने अनुभव को तिरस्कृत आत्मकथा के अंतर्गत रेखांकित किया है। सूरजपाल चौहान अपनी ही दलित जाति के दंश को झेलते हुए लिखते हैं, "जिन्हें सही ऐतिहासिक ज्ञान नहीं है वे हिंदुत्व की संकीर्ण मानसिकता की धारा में गोते खा रहे हैं और अपने ही भाइयों वाल्मीकि या भंगी जाति के लोगों से अपने आप को श्रेष्ठ मान बैठे हैं। शायद वे यह नहीं जानते कि हिंदुत्व की संकीर्णता के कारण ही भंगी जाति अस्तित्व में आयी। भंगीयों की जो दुर्दशा है उससे कौन बाहर निकालेगा उन्हें।"[6]

दलित साहित्यकारों ने हिंदी भाषा में भी आत्मकथाएँ लिखी है। इन में उल्लेखनीय है भगवानदास जी की (मैं भंगी हूँ), ओम प्रकाश वाल्मीकि (जूठन), मोहनदास नैमिशराय (अपने-अपने पिंजरे), सूरजपाल चौहान (तिरस्कृत), माता प्रसाद (झोपड़ी सें राजमहल तक), कौसल्या बैसन्त्री (दोहरा अभिशाप) और डॉ. धर्मवीर की (मेरी पत्नी और भेडियें) आदि।

घर में गरीबी इतनी थी कि नाम मात्र के धातु के बर्तन थे। घर में स्थित मिट्टी के बर्तनों के बारे में माताप्रसाद लिखते हैं- "घर में विशेष बर्तन नहीं थे। काठ की एक कठौती, मिट्टी का एक कोठिला, बटलोई, दो-तीन लोटा, एक या दो थाल, तवा, दाल बनाने के लिए मिट्टी की हँडिया, पानी भरने के लिए मिट्टी का एक घड़ा होता था। दाल हँडिया में बनती थी। दाल सबको देने के बाद उसे धोकर रख दिया जाता था, फिर

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

अगले दिन उसमें दाल बनती थी।"[7] अत: मिट्टी के बर्तन का ही अधिक उपयोग करते थे ।

दलितों का जीवन कुत्तों से भी गया गुजरा था। जिसके बारे में लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते है- "पूरी के बचे खुरचे टुकडे एकाध मिठाई का टुकडा या थोडी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछे खिल जाती थी।"[8] लेखक ने शादी ब्याह में जो जुठा भोजन रहता है उसे दलितों को दिया जाता है। इस प्रसंग का वर्णन भी अपनी आत्मकथा में किया है।

प्रस्तुत आत्मकथाओं में दलित जीवन का सच उजागर हुआ है। लेकिन हिंदी दलित साहित्य की क्लासिक आत्मकथा 'जूठन' मराठी दलित साहित्य की 'अक्करमासी' या 'अछूत' के आगे फीकी लगती है। दलित साहित्यकार 'स्वानुभूति' में सिकुड़े रहने के बजाय अन्य के अनुभव एवं संवेदनशीलताओं के प्रति सजग है। इसीलिए दलित साहित्यकार कविता और आत्मकथा के लक्ष्मण-रेखा के पार जाकर अन्य साहित्य लेखन कर रहा है। द्विज साहित्यिक मानते हैं कि उपन्यास और नाटक के लिए कल्पना और अनुभव का जो विस्तीर्ण फलकऔर निर्वैयक्तिकता चाहिए, वह दलित साहित्यकार के पास नहीं है।

मुशर्रफ आलम हंस पत्रिका में सूरजपाल चौहान की संतप्त आत्मकथा के बारे में लिखते हैं, "माँ और मैं से जुड़ी हुई संतप्त की कथा के संबंधों तक पहुँचते- पहुँचते दारूण, करुणामय और आत्मचिंतन या मंथन का विषय तो बनाती है, लेकिन साहित्य के आधारभूत सिद्धांतों में किसी बड़े फलक का इजाफा नहीं करते। सूरजपाल अपनी विशेषताओं और भावनाओं की गाथा तो सामने रखते हैं, लेकिन ऐसे प्रसंगों की मनोवैज्ञानिक तहों तक जाना नहीं चाहते जाहॉं एक पत्नी एक पराए मर्द की बॉहे ओढ़ लेती हैं।"[9]

मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा की शुरुआत दलित वस्ती से होती है। अपनी बस्ती को जो नाम दिए गए है उसके संदर्भ में वे लिखते हैं- "हमारी बस्ती भी शहर की अन्य बस्तियों की तरह थी। बस्ती का नाम चमार गेट था फिर चमार दरवाजा हुआ जिसे लोग 'चमार दरवज्जा' ही अधिक कहते बोलते थे।"[10] सामाजिक प्रताडनाएँ झेलने वाला आत्मकथाकार बचपन से ही अभावों में पला है।

उपर्युक्त विधाओं में कहीं ना कहीं पर दलित वर्ग का चित्रण दिखाई देता है ।

निष्कर्ष :-

सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन आधुनिक युग की देन है। परंपरागत साहित्यिक मान्यताओं को ठुकराकर आधुनिक दलित साहित्यकारों ने मानव महत्ता से प्रेरित होकर साहित्य के क्षेत्र में नये आयाम खोल दिये हैं। सदियों से कुण्ठित रहा दलित वर्ग आधुनिक युग में अपने आप को तथा अपनी महान शक्ति को पहचान रहा रहे। दलित साहित्यिक विद्रोही लेखन के माध्यम से परिवर्तन की नीव डाल चुका है। जब साहित्य के माध्यम से दलितों का विद्रोह एवं उनकी क्रांति की आवाज बुलंद होगी तभी दलित आंदोलन के विश्वव्यापी संग्राम में दलित साहित्यिक अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे पायेगा। दलितों की वेदना एवं पीड़ा को अभिव्यक्त करना साहित्यिकों का फर्ज है।

संदर्भ:-

1. हरदेव बाहरी (संपा.) 'हिंदी शब्दकोश पृ.438
2. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर - दलित साहित्य और उसकी सिमायें - पृ.8
3. डॉ. धर्मवीर - कबीर बाज भी कपोत भी पपीहा भी - पृ.19
4. रमणिका गुप्ता - अब मूरख नहीं बनेंगे हम - पृ.4
5. सुशीला टाकभौरे - यह तुम भी जानो - पृ.14
6. सूरजपाल चौहान - तिरस्कृत भूमिका
7. माता प्रसाद - झोपडी से राजभवन - पृ. 40
8. ओमप्रकाश वाल्मीकी- जूठन - पृ.16
9. हंस - अक्टूबर 2006 पृ - 87
10. मोहनदास नैमिशराय - अपने अपने पिंजरे - पृ.17

© RRIJM 2015, All Rights Reserved